तीन तिलंगे

(कहानी संग्रह)

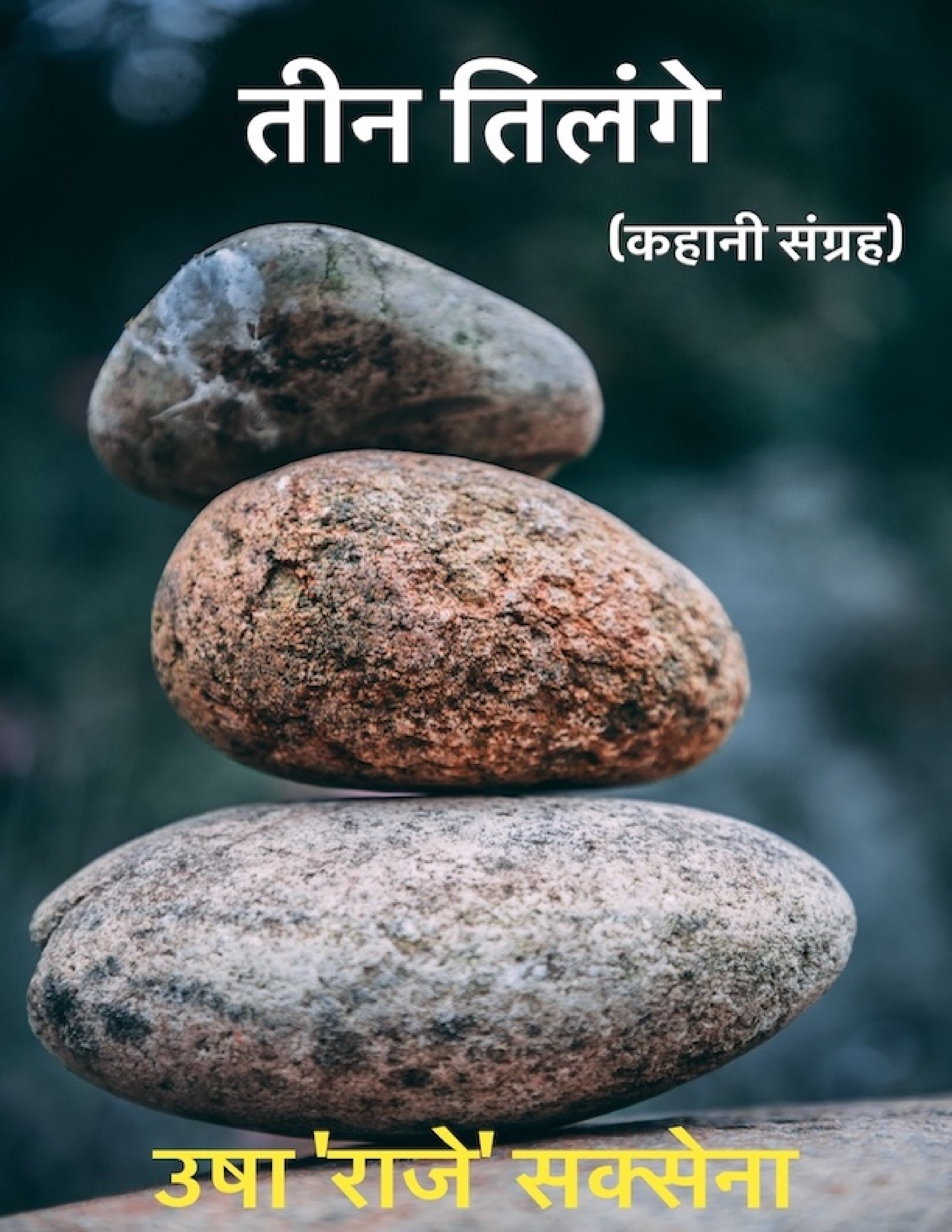

उषा 'राजे' सक्सेना

तीन तिलंगे

उषा राजे सक्सेना

प्रकाशक: नॉटनल

प्रकाशन: नवंबर, 2018

© उषा राजे सक्सेना

ये कहानियां हिंदी भाषा (अंग्रेजी के नहीं) के एक बड़े पाठक-वर्ग को शायद अपरिचित और अकल्पनीय लगें। हो सकता है कि ब्रिटेन के मूल निवासी (स्थानीय, कारकेसियन यानी गोरे) और यूरोपीय देशों से उखड़कर आए इमिग्रेंट्स के सामाजिक जीवन की जद्दोजहद और संघर्ष के ये अनुभव उन्हें अजीबो-गरीब लगें। ब्रिटेन का ऐसा यथार्थ-नैतिक-अनैतिक जैसा भी है-जो इन कहानियों में चित्रित हुआ है उससे ब्रिटेन में रहने वाला आम इंडियन परहेज करता है, बचता है। अल्पकाल के लिए आए भारतीय यात्री रचनाकारों को तो छोड़ ही दें, ब्रिटिश-इंडियन जो इस देश में अर्से से रह रहे हैं, वह भी अपनी अलग ही जीवन-शैली और पूर्वग्रह के कारण ब्रिटेन के इस तरह के यथार्थ से रू-ब-रू नहीं होना चाहते हैं।

इन कहानियों की आबोहवा सही मायनों में भारत या कहीं भी लिखी जा रही हिंदी की कहानियों से कई संदर्भों में भिन्न है। इन कहानियों के वाक्य-विन्यास में आए नए मुहावरे, नए शब्द, नई परिस्थितियां, नए दृष्टिकोण (संस्कृतियों के घाल-मेल के कारण) संभवत: उनके गले न उतरें। हो सकता है, ये कहानियां उनके संवेदनात्मक तंतुओं को अपरिचय के कारण न हिला सकें या ये कहानियां उनके कल्पना और अनुभव के दायरे से इस तरह बाहर हों कि वे इनसे आइडेंटीफाइ न कर सकें... फिर भी इस वास्तविकता को हिंदी के पाठकों तक पहुंचाना जरूरी है कि यह भी यथार्थ है चकाचौंधवाले, रहस्यमय 'प्रॉमिस लैंड' इंग्लैंड का...

अनुक्रम

सांस्कृतिक समन्वय की उदात्त भूमिका का संस्पर्श	4
एलोरा	22
तीन तिलंगे	38
शर्ली सिंपसन शुतुरमुर्ग है	56
डैडी	68
सलीना तो सिर्फ शादी करना चाहती थी	84

सांस्कृतिक समन्वय की उदात्त भूमिका का संस्पर्श

प्रवासी साहित्य को लेकर हिंदी का आलोचना-जगत ज्यादा उत्साही एवं तटस्थ नहीं है। एक तरह का शुद्धतावादी दृष्टिकोण अपनाते हुए वह भारत की भौगोलिक सीमा में रचित हिंदी साहित्य को 'अपना' मानता है, क्योंकि यहीं भारत (हिंदी पट्टी) का यथार्थ अपनी तमाम विडंबनापरक विद्रूप सच्चाइयों, सीमाओं और संभावनाओं के साथ उपस्थित होता है। इसी यथार्थ में स्वयं उसके होने और बेहतर भविष्य को गढ़ने की आकांक्षाएं निहित हैं और इसी में जड़े, अस्मिता और भविष्य भी। वह उसका आत्मविस्तार भी है और सृजन भी। प्रवासी साहित्य उसकी इस गद्गद विह्वलता में कहीं बाधा बनता है।

अपनी जड़ों से कटकर गैर मुल्कों में बसे प्रवासी भारतीय का अंतस् अपनी प्रामाणिक टीस और अकुलाहट के बावजूद उसे भिगो नहीं पाता-इसलिए कि कहीं वह पूर्वग्रही है और अभिमानी भी। विशुद्ध 'भारतीय' (और ठसके के साथ भारत की मिट्टी में रुंधे-गुंधे होने का देशज दर्प, जिसमें गोरों के देश जाकर मालामाल न हो पाने का चिर अभिलाषित मलाल भी शामिल है) एवं श्रेष्ठ होने का अहंकार और प्रवासियों के साहित्य को अनिवार्यत: नॉस्टेल्जिक मानकर 'हल्का' समझने का पूर्वग्रह! बेशक नॉस्टेल्जिया प्रवासी साहित्य का प्रमुख स्वर रहा भी है क्योंकि नॉस्टेल्जिया अपने को

भुलाने का पलायनवादी स्वर मात्र नहीं है, अपरिचित मिट्टी और संस्कृति में दूनी ताकत के साथ अपने को रोपने का शक्तिशाली हथियार भी है। ऊर्जा और जीवनी-शक्ति जड़ों से ही तो पाई जा सकती है न! इसलिए महेंद्र भल्ला जैसे भारत के यायावरी लेखक अथवा ब्रिटेन, मॉरीशस, सूरीनाम, अमरीका, यूएई आदि में 'बस' कर रचना-कर्म करने वाले प्रवासी रचनाकार नॉस्टेल्जिया के इर्द-गिर्द अपने भारतीय होने का अर्थ पाते हैं; भारत से इतर किसी दूसरे देश का वैध नागरिक होने का बोध अर्जित करते हैं; इस बोध को निष्ठापूर्वक निभाकर स्वयं को सच्चा भारतीय प्रामाणिक करने का जज्बा पाते हैं; और इस प्रकार अपनी दोहरी पहचान को द्वंद्व एवं स्खलन में खंड-खंड बिखरने नहीं देते, विशिष्ट एवं ठोस, गत्यात्मक एवं ऊर्जावान बनाकर प्रस्तुत करते हैं समूचे विश्व के सामने। विश्व सिकुड़कर गांव बन गया है-संवाद और विचार के मंच पर निरंतर अपने साथ-साथ सबको मांजता हुआ! नॉस्टेल्जिया उसकी रचनात्मक-यात्रा का प्रस्थान बिंदु हो सकता है, गंतव्य नहीं। लक्ष्य तो चीन्हा ही नहीं जा सकता, क्योंकि आगे बढ़ते प्रत्येक डग के साथ लक्ष्य पड़ाव बनकर मनुष्यता के संधान और सर्जन की अकुलाहट में व्यापक और अनंत होता चलता है। ब्रिटेन में रहने वाली प्रवासी भारतीय उषा राजे सक्सेना ऐसी ही एक्सप्लोरर कहानीकार हैं जिन्हें पढ़ना दो संस्कृतियों के आपसी सामंजस्य के बाद की उदात्त मानवीय अनुभूति से आप्लावित होना है।